द्रौपदी-विनय

अथवा

करुणा-बहत्तरी

श्री रामनाथजी कविया री कही

संपादक
प्रो० कन्हैयालाल सहल, एम० ए०
अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत-विभाग
बिड़ला कालेज, पिलानी

प्रकाशक
बंगाल-हिन्दी-मण्डल
८, रायल एक्सचेंज प्लेस, कलकत्ता

दो शब्द

हिन्दी साहित्य का बहुत-सा प्राचीन बहुमूल्य साहित्य अभी भी विभिन्न स्थानों पर बिखरा पड़ा है। इस अनुपम सामग्री का अनुसंधान, संकलन, शोध एवं प्रकाशन बंगाल-हिन्दी-मंडल की मुख्य प्रवृत्तियों में से रहा है।

पिलानी शाखा के अन्तर्गत मंडल के संग्रहालय में गत कतिपय वर्षों में काफी साहित्य-राशि एकत्र हो गई है। प्रकाशन योग्य रचनाओं का हिन्दी के योग्य विद्वानों से सम्पादन करवा कर मंडल ने शीघ्र ही छपवाने का विचार किया है। श्री कन्हैयालालजी सहल-जैसे हिन्दी के ख्याति-प्राप्त विद्वान् द्वारा सम्पादित "द्रौपदी-विनय अथवा करुण बहत्तरी" सानुवाद पुस्तिका रूप में प्रकाशित की जा रही है। द्रौपदी-विनय-सम्बन्धी रचनाएँ साहित्य में अन्य मान्य कवियों की भी मिलती हैं, परन्तु डिंगल भाषा में यह अपने प्रकार की एक ही रचना है।

हिन्दी प्रेमियों ने यदि इस पुस्तक को अपनाया तो मंडल को इस योजना के सफल बनाने में और भी अधिक प्रोत्साहन मिलेगा।

अवैतनिक मंत्री

क्रम

भूमिका

(१)

कवि की जीवनी

श्रीरामनाथजी कविया का जन्म चोरवा का बास (सीकर) में लगभग सं० १८६५ वि० में हुआ । आप वीरवर ज्ञानजी के तृतीय पुत्र थे। आमास (खँडेला) में एक कोठी इन्हें मिली थी । उसका पट्टा जब ये अपनी माताजी को देने लगे तो माता ने कहा—'बेटा, अठे ही कठे मेल दे, थारै बाप पांच गांव पाया हा, तूं एक कोठी पर कांई अँजसै है !' अर्थात् 'हे पुत्र, इसे यहीं कहीं रख दे; तुम्हारे पिता ने तो पांच गांव प्राप्त किये थे, तू एक कोठी पर ही क्या गर्व करता है !'

रामनाथजी के एक छोटे भाई थे शिवनाथजी, जो घर छोड़ कर अज्ञात स्थान को चले गये थे। एक दिन किसी त्यौहार के अवसर पर सब भाई-बहिन साथ बैठ कर भोजन कर रहे थे। इस समय माता को स्वभावतः ही शिवनाथ का स्मरण हो आया और आँखों में आँसू आ गये । माता के नेत्रों को अश्रुपूर्ण देख कर रामनाथजी ने अपने छोटे भाई को ढूंढ़ने की प्रतिज्ञा की और तत्काल ही घर से चल पड़े । उन दिनों महाराज बलवन्तसिंहजी तिजारे के सिंहासन पर आसीन थे। वे अपनी गुणग्राहकता तथा उदारता के लिए सम्पूर्ण राजस्थान में प्रसिद्ध थे । अतः अपने कनिष्ठ भ्राता को खोजते-खोजते श्रीरामनाथजी वहीं जा पहुँचे । संयोग से शिवनाथजी भी वहीं मिल गये ।

तिजाराधिपति से श्रीरामनाथजी की मुलाकात हुई । गुणज्ञ तथा दानी श्री बलवन्तसिंहजी ने रामनाथजी की विद्वत्ता व सभा-चातुरी पर मुग्ध होकर उन्हें भी अपने पास ही रख लिया। एक एक करके छः महीने बीत गये। तब एक दिन रामनाथजी ने अपने आने का असली कारण महाराज के सामने प्रकट किया और छोटे भाई को साथ लेकर अपनी मातुश्री के चरणों में पहुँचने के लिए अनुज्ञा चाही। उदारचेता यशस्वी महाराज ने अनिच्छापूर्वक एक सप्ताह की छुट्टी बड़ी मुश्किल से दी। बिदाई के अवसर पर लाखपसाव, एक हाथी, एक खड्ग तथा सीहाळी नामक ग्राम प्रदान किया जिसकी साख का निम्नलिखित दोहा प्रसिद्ध है—

> तीन सहस घर तीन सै, पाळनाळ पैंतीस ।
> सीहाळी मौजां समँद, बळवँत की बगसीस ।।

सौभाग्यशाली श्रीरामनाथजी ने अपने छोटेभाई को उक्त लाखपसाव तथा सीहाळी गांव के पट्टे सहित अपनी मातुश्री के चरणों में उपस्थित किया और अपनी प्रतिज्ञा सच्ची कर दिखाई।यह देख कर माता हर्ष से फूली न समाई, अपने प्रिय पुत्र को बड़े प्रेम से छाती से लगाया और आशीर्वादों की झड़ी लगा दी।

तत्पश्चात् श्रीरामनाथजी तथा शिवनाथजी दोनों भाई तिजारे ही रहे। सं० १८९० के आसपास अलवरेन्द्र श्री विजयसिंहजी के द्वारा मंत्राभिचार से श्री बलवन्तसिंहजी का प्राणान्त करवा दिया गया और तिजाराधिप द्वारा दी हुई अनेक जागीरों को छीन कर अपने राज्य में मिला लिया। उसी सिल-सिले में सीयाळी ग्राम भी खालसे कर लिया गया। श्रीरामनाथजी ने अनेक बार अपने ग्राम के सम्बन्ध में महाराज से अनुनय-विनय की किन्तु अलवरेन्द्र यही कहते रहे कि जिस प्रकार चतुर चारण लेते आये हैं और राजा लोग देते रहे हैं, वैसे ही मैं दूंगा। अन्त में एक दिन श्रीरामनाथजी भी यह कह कर दरबार से चल पड़े कि जिस प्रकार असली चारण अपने स्वत्वों को लेते आये हैं, वैसे ही मैं भी लेकर दिखला दूंगा।

तत्पश्चात् अलवर राज्य में प्रसिद्ध धरणा (सत्याग्रह) का आयोजन किया गया जिसमें एक सौ चारण सहर्ष प्राणोत्सर्ग के निमित्त अलवर में एकत्र हुए। उस समय जैसलमेर से रत्नू शाखा का एक चारण भी घोड़ों का व्यापार करता हुआ इधर आ निकला। उसने जब नगर में 'धरणे' की चर्चा सुनी तो अपने घोड़ों को अल्प मूल्य में ही लुटा दिया,—विक्रय द्वारा जो द्रव्य

इकट्ठा हुआ, उसकी भेंट लेकर अपना प्राणोत्सर्ग करने के लिए धरणे के स्थान पर जा पहुँचा। इस वीर की इस विलक्षण जातिहितैषिता पर मुग्ध होकर श्रीरामनाथजी के मुख से अनायास ही ये दोहे निकल पड़े—

जागावत जेता जिसा, असती भगा अनेक।
कलि़यो गाडो काढवा, आयो थलि़यो एक॥ १॥
मरस्यां तो मोटं मतै, सह जग कहै सपूत।
जोस्यां तो देस्यां जरू, जेता रै सिर जूत॥ २॥

जैसलमेर के इस चारण को प्राणोत्सर्ग के लिए तैयार देख कर अलवर राज्य का पोलपात जैतसिंह जागावत भयभीत हो धरने को छोड़ कर भग गया था। इसी प्रसंग का उल्लेख दोनों दोहों में हुआ है।

इस रोमांचकारी नर-संहार की चर्चा सुन कर श्री अलवरेन्द्र के बड़े भ्राता राजवी ठा० सा० हनुमन्तसिंहजी (ठि० थाणा) ने तथा शाहपुरे वाली महारानी ने अलवरेन्द्र को बहुत कुछ समझाया-बुझाया किन्तु राज-हठ के आगे किसी की एक न चली। श्री हनुमन्तसिंहजी इसपर असन्तुष्ट होकर महाराज से यह कह कर चले गये कि ऐसे अन्यायी एवं अत्याचारी राजा के राज्य में रहना भी महापाप है। उधर रामनाथजी के नेतृत्व में १०१ चारण अपने प्रिय प्राणों के उत्सर्ग करने से पूर्व अपनी इष्टदेवी जगज्जननी जगदम्बा की आराधना करने लगे। उस समय रामनाथजी ने निम्नलिखित करुणापूर्ण दोहे कहे—

थल़वट हेलो थाय, आता वेगा ईसरी
मोरी बिरियां माय, (कांइ) बूडा हुयगा बोसहथ॥
* वहै सिंह होकरड़ोह, पतसाहां परचा दिया।
(पण) डरपी डोकरड़ीह, मा आतो मेवात में॥

प्रवाद प्रचलित है कि शरणागतवत्सला जगज्जननी के प्रताप से अलवर का राजप्रासाद हिलने लगा। यह देख कर रनवास में हाहाकार मच गया और अलवरेन्द्र की भी अक्ल ठिकाने आई। फौरन सवार दौड़ा कर धरणे को स्थगित करने की प्रार्थना की गई तथा मालाखेड़ा के मुकाम पर पहुँचे हुए श्री हनुमन्त-

---

* बादशाह अकबर के नवरोजे में क्षत्रिय ललनाओं का जाना रोकने के लिए सिंह का स्वरूप धारण कर गर्जना करके जिस शक्ति ने अपना परिचय दिया था, वह देवी आज मेवात (अलवर) में आती हुई डर रही है।

सिंहजी को भी शुतर-सवार भिजवाया गया और कहलवाया गया कि मैं आपकी बात मानने को तैयार हूँ, आप यथासंभव शीघ्र ही लौट आइये। इस प्रकार धरणा समाप्त हुआ। श्री रामनाथजी को सीहाली के बदले सरावट नामक सुन्दर ग्राम प्रदान किया गया। धरणे की सकुशल समाप्ति पर श्री कवियाजी नें ऊपर के सोरठे को निम्नलिखित परिवर्तित रूप दे दिया—

वहं सिंह होफरड़ीह, पतसाहां परचा दिया।
† डग भर डोकरड़ीह, मा आई मेवात में॥

तत्पश्चात् श्री विजयसिंहजी की बड़ी कृपा इनपर रही। महाराज के स्वर्गारोहण के पश्चात् श्री शिवदानसिंहजी सिंहासनासीन हुए। इनके अप्रौढ़ होने के कारण ब्रिटिश सरकार ने श्री रामनाथजी तथा भूपालसिंहजी राठौड़ (माचाड़ी) को अभिभावक नियत कर दिया। मुस्लिम संसर्ग के कारण महाराज शिवदानसिंहजी इस्लामी संस्कृति की ओर अधिक झुकने लगे और उन्होंने पट्टेदार बाल रखना प्रारम्भ कर दिया। आर्य-संस्कृति के अनन्य भक्त श्रीरामनाथजी को यह बेढंगी रफ्तार नहीं सुहाई। अतः उन्होंने श्री भूपालसिंहजी के सहयोग से बहुत समझाने-बुझाने पर भी न मानने पर एक दिन बलात् पकड़ कर पट्टे कटवा दिये। इसपर शिवदानसिंहजी रुष्ट होकर बोले—कभी अवसर आने पर प्रतिशोध लूंगा। श्रीरामनाथजी ने कहा—जो हो, मैं एक क्षत्रिय-कुमार को पथ-भ्रष्ट होते नहीं देख सकता। शिवदानसिंहजी को जब राज्याधिकार मिला तो उन्होंने भोपालसिंहजी को सरे आम जूतों से पिटवाया और आत्म-तोष कर लिया। फिर अपने मरजीदान जेल के दारोगा को रामनाथजी को बुलवाने भेजा। स्वाभिमानी श्रीरामनाथजी बात की बात में सब समझ गये; तुरन्त ही जगदम्बा का ध्यान कर अपने पेट में तीक्ष्ण कटार पहन कर आने वाले से कहा कि लो चलो। इस रौद्र रूप को देख कर दारोगा दंग रह गया। दुष्टतावश कहने लगा—बस यह हुई! जिसपर श्रीरामनाथजी दूसरी कटार लेकर दारोगा पर झपटे। दारोगा पछाड़ खाकर गिर पड़ा और उसके होश गुम हो गये! सब समाचार शहर में विद्युत् गति से फैल गया। चारण का इस प्रकार मर जाना उस युग में भारी कलंक समझा जाता था। अतः महाराज ने तत्काल चिकित्सा का प्रबन्ध करवाया और आरोग्य-लाभ हो जाने पर श्रीरामनाथजी को बाला किला अलवर में अवरुद्ध करवा दिया। और

---

† डग भरती हुई वह डोकरी (मा) मेवात में आज आई है।

उनके गांव सरावट को अपहृत कर लिया। एक बार महाराज जब किले की ओर गये तो रामनाथ जी को सुना कर कहने लगे कि इन सफेद बालों में अच्छी धूल डलवाई ! रामनाथ जी ने तत्काल गर्ज कर कहा—मैंने तो अपने सफेद बालों की धूल कटार द्वारा झाड़ ली किन्तु आपके काले बालों की धूल गाड़े जाने पर भी नहीं झड़ेगी !

इस बन्धन-काल में श्री रामनाथजी ने अपने हृदय की करुण पुकार को द्रौपदी के सोरठों द्वारा व्यक्त किया जो 'करुण बहत्तरी' के नाम से प्रसिद्ध है। इन्हीं दिनों श्री पाबूजी राठौड़ के ३१ सोरठा इन्होंने लिखे थे।

श्रीरामनाथजी के बड़ी ठकुरानी से परशुरामजी और छोटी से गंगादानजी —इस प्रकार दो पितृतुल्य गुणी पुत्र थे। श्रीमहाराज शिवदानसिंहजी शाहपुराधीश के भानजे थे। शाहपुरा (मेवाड़) के राजाधिराज की सहृदयता एवं सज्जनता उन दिनों अति प्रसिद्ध थी। उक्त दोनों सुपुत्र उनकी सेवा में पहुँचे और अपने शस्त्र-कौशल तथा काव्य-चातुर्य से राजाधिराज को मुग्ध कर लिया। शाहपुराधीश ने यथेच्छ वर माँगने के लिए कहा। तब दोनों सुपुत्रों ने अपने पिता की कष्ट-कथा कह सुनाई। शाहपुराधीश ने कहा कि आपके पिता ब्रिटिश सरकार के सम्पर्क में रहे हैं, जेल से छूटने के बाद वे अलवर को कोई धक्का न पहुँचावें, इसकी जमानत कौन देगा ? डिग्गी ठा० सा० बिसनसिंहजी ने जमानत देना स्वीकार किया। उधर शाहपुराधीश अलवर पहुँचे और सहभोज के समय शिवदानसिंहजी से एक बात कहने की इच्छा प्रकट की। शिवदानसिंहजी ने कहा—एक रामनाथजी चारण के अतिरिक्त आप जो कहें, शिरोधार्य है। शाहपुराधीश ने उत्तर दिया—मैं तो अपने जीवन भर में केवल एक बार इसी भिक्षा के लिए अलवर आया हूँ। श्री शिवदानसिंह जी ने कौर से हाथ खेंच लिया। श्री शाहपुराधिप भी थाल पर से उठ खड़े हुए। यह समाचार जब अन्तःपुर में पहुँचा तो शाहपुराधीश की बहिन तथा अलवरेन्द्र की माता श्री रूपकुंवरजी ने तुरन्त उपस्थित होकर बीच बचाव किया तथा माता ने पुत्र को समझा कर श्रीरामनाथजी की मुक्ति की आज्ञा घोषित करवा दी। उनका गांव भी उन्हें लौटा दिया गया। रामनाथजी को जब वहां बुलाया गया तो उन्होंने कृतज्ञता-प्रदर्शनार्थ ये दोहे कहे—

तैं आयां नभ तोल, कवी जँजीरां काढियो।
मोनै लीधो मोल, शाहपुरै शीशोदियै ॥

रूप कँवरि निज रीझ रो, अचरज कासूं आण ।
शाहपुरौ पीहर सरस, नान्हाणा वोकाण ।।

श्री रामनाथजी दोहों और सोरठों के रचने में सिद्धहस्त थे। आपकी यह विशेषता थी कि पात्र को प्रत्यक्ष देख कर तत्काल अपने भाव व्यक्त कर देते थे।

सरावट में जगदम्बा का स्थान डूंगरी पर है। परमभक्त श्रीरामनाथजी नित्य वहां जाकर पूजन करने के पश्चात् भोजन किया करते थे। जब बुढ़ापे ने अधिक दबा लिया तो भक्ति भरे कर्तव्य-पथ पर बढ़ने की प्रेरणा देनेवाले सोरठे बनाने लगे। उदाहरणार्थ—

मोटै गिर मगतोह, थगथग तो आवण थटै ।
पिसलूं मो पगतोह, डिगतो राखो डोकरो ।। १ ।।
हूँ आऊँ हिक बार, डाढाळी री डूंगरी ।
वाहूं बारंबार, (म्हारी) साय करो मेहासधू ।। २ ।।

७० वर्ष की अवस्था में सं० १९३५ वि० में श्री रामनाथजी कविया उस लोक के पथिक बने जहां से लौट कर कोई नहीं आता।

(२)
द्रौपदी-विनय अथवा करुण-बहत्तरी

जैसा पहले कहा जा चुका है, द्रौपदी-विनय-सम्बन्धी सोरठे कवि ने उस समय लिखे थे जब वे अलवर के किले में कैद कर दिये गये थे। पांचाली-चीर-हरण एक ऐसा अलौकिक प्रसंग है जिससे श्रद्धालु भगवद्भक्तों को सदैव प्रेरणा मिलती रही है। कवि ने महाभारत के इस उपाख्यान का आश्रय लेकर अपने ही हृदय की करुण चीत्कार को वाणी दी है। इन सोरठों की भाषा सरल, प्रवाहमयी तथा चोट करने वाली है।

महाभारत में भी जहाँ यह प्रसंग वर्णित हुआ है, वहाँ पाठकों के सात्विक अमर्ष की अच्छी व्यंजना होती है। यहाँ उस प्रसंग का अत्यन्त संक्षेप में उल्लेख कर दिया जाता है—

"दुर्योधन की आज्ञा पाकर उसका सूत प्रातिकामी पाण्डवों के अन्तःपुर में जाकर द्रौपदी से कहने लगा—"पांचालि ! आज से सुयोधन तेरा पति है। भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव सबको युधिष्ठिर ने दाँव पर लगा दिया और हार गये। इसके बाद जब वे अपने को भी हार गये तब उन्होंने द्रौपदी को भी

दाँव पर लगा दिया और उसे भी हार गये !" यह सुनकर द्रौपदी ने कहा— हे सूत ! कुरुपति ने मुझे धर्मपूर्वक नहीं जीता है। जो युधिष्ठिर स्वयं अपने आपको हार चुके, वे मुझे फिर दाँव पर कैसे लगा सकते थे ? सूत ने यही बात जाकर दुर्योधन से कही। दुर्योधन ने कहा—द्रौपदी को जो कहना हो, वह सभा में आकर कहे। विलम्ब होता देख कर दुर्योधन ने दुःशासन को भेजा। दुःशासन द्रौपदी के केश पकड़ कर जब उसे सभा-भवन में ले जाने लगा तो द्रौपदी ने कहा—

"सा कृष्यमाणा नमितांगयष्टिः शनैरुवाचाथ रजस्वलास्मि।
एकं च वासो मम मन्दबुद्धे सभां नेतुं नार्हसि मामनार्य।"

मैं रजस्वला हूँ, एक वस्त्र धारण किये हूँ। हे अनार्य ! हे मन्दबुद्धे ! ऐसी स्थिति में मुझे सभा में ले चलना तुम्हारे लिये उचित नहीं। किन्तु दुःशासन ने एक न सुनी और कहने लगा—

"रजस्वला वा भव याज्ञसेनि एकाम्बरा वाप्यथवाविवस्त्रा।
द्यूते जिता चासि कृतासि दासी दासीषु वासश्च यथोपजोषम्।"

तू रजस्वला हो चाहे एक वस्त्र वाली हो अथवा विवस्त्र ही क्यों न हो, तू द्यूत में जीती जाकर दासी बना ली गई है और दासी को वस्त्र देना न देना स्वामी की इच्छा पर निर्भर है।

जब बार बार विरोध करने पर भी द्रौपदी सभा में लाई गई तो उसने कहा—

"इमे सभायामुपनीतशास्त्राः क्रियावन्तः सर्व एवेन्द्रकल्पाः।
गुरुस्थाना गुरवश्चैव सर्वे तेषामग्रे नोत्सहे स्थातुमेवम्॥"

इस सभा में सभी शास्त्रज्ञ, क्रियावान् और इन्द्र तुल्य हैं—मेरे लिये गुरुस्थानीय अथवा मेरे गुरु हैं, उनके सम्मुख ऐसी अवस्था में मैं कैसे ठहर सकती हूँ ? इसपर भीष्म ने उत्तर दिया—

"न धर्मसौक्ष्म्यात्सुभगे विवेक्तुं शक्नोमि ते प्रश्नमिमं यथावत्।
अस्वाम्यशक्तः पणितुं परस्वं स्त्रियाश्च भर्तुर्वशतां समीक्ष्य॥
त्यजेत सर्वां पृथिवीं समृद्धां युधिष्ठिरो धर्ममथो न जह्यात्।
उक्तं जितोस्मीति च पाण्डवेन तस्मान्न शक्नोमि विवेक्तुमेतत्॥"

(सभापर्व, अध्याय ६७, श्लोक ४७–४८)

हे सुभगे ! धर्म की गति अत्यन्त सूक्ष्म है। वाणी द्वारा उसकी विवेचना कैसे की जाय ? जो अपने आपको हार चुका है, वह दूसरे को दाँव पर कैसे

लगा सकता है किन्तु जो दास हो चुका है उसकी भार्या भी तो दासी ही हो गई ! युधिष्ठिर धन-धान्ययुक्त समस्त पृथ्वी को छोड़ सकता है किन्तु धर्म को वह नहीं छोड़ सकता। और उसने यही कहा है कि मैं जीत लिया गया हूँ। ऐसी अवस्था में धर्म की विवेचना करना सम्भव नहीं !

इस विपन्न और दयनीय अवस्था में द्रौपदी को देख कर भीम को युधिष्ठिर पर भी क्रोध आ गया किन्तु अर्जुन ने किसी प्रकार उसे शान्त किया। इसके बाद धृतराष्ट्र के पुत्र विकर्ण ने कहा—

"साधारणी च सर्वेषां पाण्डवानामनिन्दिता ।
जितेन पूर्वं चानेन पाण्डवेन कृतः पणः ।।
इयं च कीर्तिता कृष्णा सौबलेन पणार्थिना ।
एतत्सर्वं विचार्याहं मन्ये न विजितामिमाम् ।।"

(सभापर्व, अध्याय ६८, श्लोक २३—२४)

यह अनिन्दिता द्रौपदी पाँचों पाण्डवों की पत्नी है और इसे अकेले युधिष्ठिर ने दाँव पर लगाया है और वह भी उस अवस्था में जब युधिष्ठिर स्वयं अपने आपको हार चुके हैं ! और शकुनि ने ही द्रौपदी को दाँव पर लगा डालने की बात युधिष्ठिर के सामने रखी थी। इन सब बातों पर विचार करके मैं इसी निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि द्रौपदी को विजित नहीं माना जा सकता। यह सुन कर सभी सभासद विकर्ण की प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे। किन्तु कर्ण को यह बात बड़ी नागवार गुजरी। उसने कहा—इस विकर्ण को धर्म का कुछ पता नहीं, बालक होकर वृद्धों की-सी बातें करता है। वास्तव में स्त्री के तो एक ही पति होता है। जिस स्त्री के पाँच-पाँच पति हों, उसे सभा में लाना अथवा उसे विवस्त्र करना किसी भी प्रकार अनुचित नहीं कहा जा सकता—

"एको भर्ता स्त्रिया देवैर्विहितः कुरुनन्दन ।
इयं त्वनेकवशगा बन्धकीति विनिश्चिता ।।
अस्याः सभामानयनं न चित्रमिति मे मतिः ।
एकाम्बरधरत्वं वाप्यथवापि विवस्त्रता ।।

(सभापर्व, अध्याय ६८, श्लोक ३५—३६)

कर्ण के कहने से दुःशासन फिर द्रौपदी के वस्त्र खींचने लगा। इस पर मन-ही-मन द्रौपदी ने भगवान् का स्मरण किया—

आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्या चिन्तितो हरिः ।
गोविन्द द्वारिकावासिन्कृष्ण गोपीजनप्रिय ॥ ४१ ॥
कौरवैः परिभूतां मां किं न जानासि केशव ।
हे नाथ हे रमानाथ व्रजनाथार्तिनाशन ।
कौरवार्णवमग्नां मामुद्धरस्व जनार्दन ॥ ४२ ॥
कृष्ण कृष्ण महायोगिन्विश्वात्मन्विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोविन्द कुरुमध्येवसीदतीम् ॥ ४३ ॥
इत्यनुस्मृत्य कृष्णं सा हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ।
प्रारुदद्दुःखिता राजन्मुखमाच्छाद्य भामिनी ॥ ४४ ॥
याज्ञसेन्या वचः श्रुत्वा कृष्णो गह्वरितोभवत् ।
त्यक्त्वा शय्यासनं पद्भ्यां कृपालुः कृपयाभ्यगात् ॥ ४५ ॥
आकृष्यमाणे वसने द्रौपद्यास्तु विशांपते ।
तद्रूपमपरं वस्त्रं प्रादुरासीदनेकशः ॥ ४७ ॥
नानारागविरागाणि वसनान्यथ वै प्रभो ।
प्रादुर्भवन्ति शतशो धर्मस्य परिपालनात् ॥ ४८ ॥

भगवान् ने द्रौपदी की प्रार्थना सुन ली। जैसा वस्त्र द्रौपदी ने पहन रखा था, वैसा ही अपरिमित वस्त्र प्रादुर्भूत हो गया। धर्म की कुछ ऐसी ही महिमा है। धर्म के परिपालन से नाना राग-विराग और शतशः वस्त्रों का प्रादुर्भाव हो जाता है। महाभारतकार ने द्रौपदी की विनय को केवल ५–६ पंक्तियों में रख दिया है। श्री मैथिलीशरण जी गुप्त ने भी इसी विषय पर 'द्रौपती दुकूल' नामक कविता, बहुत वर्ष हुए, लिखी थी जिसका निखरा हुआ रूप उनके 'जय-काव्य' में (जो अभी तक अप्रकाशित है) प्रकट हुआ है इसी विनय के करुण-प्रसंग को लेकर श्रीरामनाथजी कविया ने अनेक सोरठों की रचना की थी। सती नारी के आक्रोश की अच्छी व्यंजना इन सोरठों द्वारा हुई है। द्रौपदी की उक्तियों में कुछ पाठकों को कहीं-कहीं मर्यादा का अभाव भले ही खटके किन्तु देखने की बात यह है कि जब भरी सभा में इस प्रकार नारी का अपमान किया जा रहा हो तो नारी-हृदय की इस प्रकार की आक्रोशमयी अभिव्यक्ति को किसी भी प्रकार अस्वाभाविक नहीं कहा जा सकता। द्रौपदी के ये सोरठे राजस्थान में अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इनकी एक प्रति बंगाल हिन्दी मण्डल के कार्यालय में सुरक्षित है। बंगाल हिन्दी मण्डल के अधिकारियों

का मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिनकी प्रेरणा से मुझे इन सोरठों के सम्पादन का सुअवसर प्राप्त हो सका। ठा० सा० श्री ईश्वरदानजी आशिया ने मुझे इस कार्य में बड़ी सहायता पहुँचाई है जिसके लिये मैं उनका अत्यन्त उपकृत हूँ।

तुलसी-जयन्ती
सं० २००९,
पिलानी

—कन्हैयालाल सहल

द्रौपदी-विनय

दोहा

श्री गणपति को ध्यान धर, विश्वेश्वर कर याद ।
जिनके सनमुख होत ही, मिटत अनेक विषाद ।।१।।

इस प्रारम्भिक दोहे में मंगलाचरण किया गया है। कवि कहता है कि (हे मन !) तू श्रीगणपति का ध्यान धर और विश्वेश्वर भगवान् का स्मरण कर, जिनके सम्मुख होते ही अनेक प्रकार के दुःख नष्ट हो जाते हैं ।। १ ।।

टि०—इस दोहे में डिंगल भाषा का प्रयोग न होने के कारण कवि ने वैण-सगाई को आवश्यक नहीं समझा है ।

दोहा

रामत चौपड़ राज री, है धिक बार हजार ।
धण सूँपी लूँठाँ थकै, धरमराज धिक्कार ।।२।।

शब्दार्थ—रामत = खेल । धण = स्त्री । लूंठां = जबरदस्तों के । थकै = सामने । राज री = आपकी ।

भावार्थ—द्रौपदी सबसे पहले युधिष्ठिर को सम्बोधित करके कहती है कि आपके इस चौपड़ के खेल को हजार बार धिक्कार है। जबरदस्त (शत्रुओं) के समक्ष आपने अपनी विवाहिता पत्नी तक को सुपुर्द कर दिया ! हे धर्मराज ! आपको धिक्कार है ! ।। २ ।।

टि०—'धरमराज' शब्द यहाँ बहुत सटीक बैठा है। अपनी विवाहिता पत्नी तक को जो शत्रुओं को सुपुर्द कर दे, वह भी धर्मराज कहलाये ! कितना तीक्ष्ण व्यंग्य है इस शब्द में !

अलंकार—परिकर (चतुर्थ चरण) ।

सोरठा

वेध्यो मछ जिण बार, माण दुजोधन मेटियो ।
खैंचै कच उण खार, थां पारथ बैठ्यां थकां ।।३।।

शब्दार्थ—बेध्यो (सं० विद्ध) = बेधा। मछ = मत्स्य। जिण बार = जिस समय। माण = मान। दुजोधन = दुर्योधन का। मेटियौ = मिटाया, दूर किया। कच = बाल। उण खार = उस खार से। 'खार' फारसी शब्द है जिसका अर्थ है डाह या द्वेष। थां = तुम्हारे। बैठयां थकां = बैठे हुए।

भावार्थ—जिस समय दुर्योधन ने भरी सभा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ बुलाया, उस समय वह अर्जुन को संबोधित करके कह रही है—

जिस समय तुमने मत्स्य को बेध दिया था और दुर्योधन के मान को मिटा दिया था (तभी से वह खार खाये बैठा था); उसी द्वेष के कारण आज मेरे बाल खींचे जा रहे हैं। किन्तु हे पृथा के पुत्र ! यह सब तुम्हारी उप-स्थिति में हो रहा है और तुम बैठे-बैठे देख रहे हो ! द्रौपदी-स्वयंवर में जिस अर्जुन ने कौरवों का मान-मर्दन कर दिया था, आज वही अर्जुन अपनी विवा-हिता पत्नी का अपमान अपनी आँखों देख रहा है ! ॥ ३ ॥

टि०—द्रौपदी-स्वयंवर के अवसर पर एक मछली ऊपर टाँग दी गई थी जिससे कुछ नीचे हट कर एक चक्र घूम रहा था। द्रुपद ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई इस मछली की आँख को बाणों से बेध देगा, वही मेरी पुत्री को प्राप्त कर सकेगा।

"इदं सज्यं धनुः कृत्वा सज्जैरेभिश्च सायकैः।
अतीत्य लक्ष्यं यो वेद्धा स लब्धा मत्सुतामिमाम्॥"

द्रौपदी के भाई प्रद्युम्न ने भी इसी तरह की बात कही थी—

"इदं धनुर्लक्ष्यमिमे च बाणाः शृण्वन्तु मे भूपतयः समेताः।
छिद्रेण यंत्रस्य समर्पयध्वं शरैः शितैर्व्योमचरैर्दशार्धैः॥
एतन्महत्कर्म करोति यो वै कुलेन रूपेण बलेन युक्तः।
तस्याद्यभार्या भगिनी ममेयं कृष्णा भवित्री न मृषा ब्रवीमि।"

सूतपुत्र होने के कारण कर्ण को लक्ष्य-भेद का अवसर नहीं दिया गया था। जब कोई क्षत्रिय लक्ष्य-भेद न कर सका तो अर्जुन ने उठ कर लक्ष्य-भेद किया था। 'बेध्यो मछ जिण बार' में अर्जुन द्वारा लक्ष्य-भेद की इसी अन्तर्गत कथा की ओर संकेत है। अर्जुन को अपने पूर्व-शौर्य का स्मरण दिला कर द्रौपदी उसे उत्तेजित करना चाहती है।

सोरठा

रूठ असी दै रेस, ऊठ महाभड़ ऊठ अब।
कूट गहै छै केस, दूठ वृकोदर देख रे ॥४॥

शब्दार्थ—रूठ = रुष्ट होकर। असी = ऐसी। रेस = यातना। कूट = दुष्ट। दूठ = जबरदस्त, प्रबल।

भावार्थ—भीम को संबोधित करती हुई द्रौपदी कहती है—हे वीर वृकोदर! देख तो सही, यह दुष्ट दुःशासन मेरे बाल खींच रहा है। हे महाभट! अब तो उठ और रुष्ट हो कर शत्रुओं को ऐसी यातना पहुँचा (कि वे भी याद रखें!) ॥ ४ ॥

टि० रूठ, ऊठ, दूठ आदि का आंतरिक तुक-साम्य (Internal rhyme) यहाँ नाद-सौन्दर्य उत्पन्न करने में सहायक हुआ है।

सोरठा

भव तूं जाणै भेव, वेध्यो मछ जिण बार रो।
दव देव सहदेव, बेल करै तो आ बखत ॥५॥

शब्दार्थ—भेव = भेद। बेल = सहायता। आ बखत = यह वक्त, यह समय।

भावार्थ—सहदेव को संबोधित करती हुई द्रौपदी कहती है—संसार में उस मत्स्य-वेध के रहस्य को तू भली भाँति जानता है। हे देव देव सहदेव! अगर तुम्हें सहायता करनी है तो सहायता करने का यही समय है—ऐसा वक्त फिर कब हाथ आयेगा?

टि०—'बखत' का यह स्त्रीलिंग प्रयोग यहाँ द्रष्टव्य है।

सोरठा

है तूं बाकी हेक, कर पाणप धर मूंछ कर।
दूजा सामौ देख, कायर मत होजै नकुल ॥६॥

शब्दार्थ—हेक = एक। पाणप = पराक्रम। दूजां = दूसरे (अपने भाइयों के) सामौ = सामने।

भावार्थ—हे नकुल! और सब पाण्डवों से तो रक्षार्थ में प्रार्थना कर चुकी। अब तो केवल तू ही बाकी बचा है। तू वीर क्षत्रिय की तरह अपनी मूंछ पर

हाथ रख और पराक्रम दिखला। अपने दूसरे भाइयों की देखा-देखी तू भी कायर मत हो जाना ॥ ६ ॥

अलंकार—दूसरे चरण में यमक।

सोरठा

पति गंध्रप है पाँच, धरतां पग धूजै धरा।
आवै लाज न आँच, धर नख सूं कुचरै धवल़ ॥७॥

शब्दार्थ—गंध्रप = गंधर्व। रेफ का स्थान-परिवर्तन डिंगल में प्रायः देखा जाता है। धरतां = रखते हुए। पग = पैर। धूजै = कांपती है। आंच = क्रोध। धवल़ = वीर। कुचरै (सं० कर्त्तन) = कुरेद रहे हैं।

भावार्थ—गन्धर्व तुल्य मेरे पाँच पति हैं जिनके पैर रखने से पृथ्वी भी कांपने लगती है (किन्तु बड़े दुःख और आश्चर्य की बात है कि) ये वीर अपने नखों से पृथ्वी को कुरेद रहे हैं; इन्हें लज्जा आती है, क्रोध नहीं आता। यह लज्जा का प्रसंग नहीं, इस अवसर पर तो इनके दिल में आग लग जानी चाहिए थी ॥ ७ ॥

अलंकार—दूसरे चरण में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास; तीसरे चरण में देहलीदीपक।

सोरठा

पंडव जणिया पाँच, जिकण पेट थारौ जनम।
जीवत नाऽवै लाज, कैरव कच खेंचै करन ॥८॥

शब्दार्थ—जणिया = पैदा किये। जिकण = जिस। नाऽवै = नहीं आती है।

भावार्थ—माता कुन्ती की जिस कोख से पांच पाण्डवों का जन्म हुआ, उसी से हे कर्ण! तुम भी उत्पन्न हुए हो। आज यह कौरव (दुःशासन) अपने हाथों से मेरे बाल खींच रहा है; (इस दृश्य को देख कर भी) तुम्हें प्राण-धारण करते लज्जा नहीं आती, धिक्कार है तुम्हारे इस जीवन को! ॥ ८ ॥

सोरठा

अणहुंती ह्वै आज, हुई न आगै होण री।
कैरव करै अकाज, आज पितामह ईखतां ॥९॥

शब्दार्थ—अणहूवैती = अनहोनी। व्है = हो रही है। होण री = होने की। ईखतां = देखते हुए। आगै = भविष्य में, आगे।

भावार्थ—आज अनहोनी हो रही है, न तो भूतकाल में कभी ऐसी घटना घटित हुई, न भविष्य में कभी घटित होगी। आज भीष्म पितामह के देखते हुए भी कौरव इस प्रकार का अकार्य कर रहे हैं॥ ९॥

अलंकार—तीसरे चरण में वृत्यनुप्रास और छेकानुप्रास; तीसरे और चौथे चरण में तीसरी विभावना। (प्रतिबन्धक के होते हुए भी कार्य का होना वर्णित)

सोरठा

धव म्हारा रणधीर, हरण चीर हाथां हुवा।
नाकां छलियौ नीर, द्रोण सभासद देख रे॥१०॥

शब्दार्थ—धव = पति। नाकां छलियौ नीर = पानी सीमा का अतिक्रमण करके बहने लगा अब; बचने की कोई आशा नहीं, लज्जा की पराकाष्ठा हो गई! *

भावार्थ—मेरे पति यद्यपि रणधीर हैं किन्तु इन्होंने इस द्यूत के कारण अपने हाथों चीर-हरण करवाया। पर सबसे बड़े दुःख और आश्चर्य की बात तो यह है कि द्रोणाचार्य जिस सभा के सदस्य हों, वहां भी इस तरह का कुकृत्य हो! लज्जा की पराकाष्ठा हो गई, अब बचने की क्या आशा रही! ॥ १० ॥

अलंकार—'रण' और 'हरण' में यमक।

सोरठा

मिटसी सह मतिमंद, कलंक न मिटसी भरत कुल।
अंध हिया रा अंध, पूत दुसासण पाल रे॥११॥

शब्दार्थ—सह = सब। पाल = रोक।

भावार्थ—धृतराष्ट्र को संबोधित करती हुई द्रौपदी की उक्ति है—हे अन्ध! तुम केवल आंखों के ही अन्धे नहीं, हृदय के भी अन्धे हो। हे मति-मन्द! सब कुछ नष्ट हो जायगा किन्तु भरत-कुल में (नारी के अपमान का जो यह कलंक लग रहा है) कभी न मिटेगा। (अब भी किसी तरह) अपने इस पुत्र दुःशासन को (इस जघन्य कृत्य से) रोक! ॥ ११ ॥

---

* मिलाइये—"व्यपदेशमाविलयितुं किमीहसे जनमिमं च पातयितुम्।
कूलंकषेव सिन्धुः प्रसन्नमम्भस्तटतरुं च ॥"
(अभिज्ञानशाकुन्तलम्—पंचमोऽङ्कः)

सोरठा

सकुनी जीते सार, घण अमृत बिख घोलियौ ।
होणहार री हार, करसी भारत रौ कदन ॥१२॥

शब्दार्थ—सार = गोटियां । जीते = जीत कर । कदन (सं०) = नाश ।

भावार्थ—चौपड़ के खेल में विजयी होकर शकुनि ने घने अमृत में विष घोल दिया । भवितव्यतावश पांडवों की जो हार हो गई, उससे भारत का नाश हो जायगा ॥ १२ ॥

अलंकार—तीसरे चरण में वृत्यनुप्रास और यमक ।

सोरठा

लौ या बिरियां लाख, धर थांरी थे ही धणी ।
निंदित क्रित हकनाक, कुरुकुलभूखण मत करो ॥१३॥

शब्दार्थ—या = इसको । बिरियां = बार । थांरी = आपकी । थे ही = आप ही । धणी = स्वामी । क्रित = कृत्य । हकनाक = नाहक । 'हकनाक' में आगम और वर्ण-विपर्यय द्रष्टव्य है ।

भावार्थ—लाख बार इस पृथ्वी को लो; आपकी ही यह पृथ्वी ठहरी और आप ही इसके स्वामी—(इसे बाँटें चाहे न बाँटें) किन्तु हे कुरुकुल-भूषण ! नाहक ही यह निंदित कृत्य क्यों कर रहे हैं, इसे न होने दीजिये ॥१३॥

सोरठा

गरडी गंधारीह, जिण नै पूछौ जाय नै ।
सो कहसी सारीह, क्रत अक्रत री कैरवाँ ॥१४॥

शब्दार्थ—गरडी = वृद्धा । जिण नै = जिसको । जाय नै = जाकर । कहसी = कहेगी । सारीह = सब । क्रत अक्रत री = कार्य-अकार्य की । कैरवां = कौरवों के ।

भावार्थ—जो वृद्धा गांधारी है, उसे जा कर पूछो । कौरवों के कार्या-कार्य की वह सब बातें कह देगी । 'कैरवाँ' को संबोधन मान कर तीसरे और चौथे चरण का यह अर्थ भी किया जा सकता है—

"हे कौरवो ! कर्तव्याकर्तव्य के सम्बन्ध में वह सब बातें बतला देगी ।"॥१४॥

सोरठा

ब्यास बिगाड़्यौ वंस, कैरव निपज्या जेण कुळ ।
असली व्हेता अंस, सरम न लेता सांवरा ॥१५॥

शब्दार्थ—निपज्या = उत्पन्न हुए। जेण कुल = जिस वंश में। व्हेता = होते। असली अंस = असल माता-पिता से उत्पन्न ।

भावार्थ—व्यास ने उस वंश को बिगाड़ दिया जिसमें कौरव उत्पन्न हुए थे। अगर वे असली माता-पिता की संतान होते तो हे कृष्ण ! वे इस तरह मेरी लाज न लेते ! ॥ १५ ॥

अन्तर्गत कथा—महाभारत में प्रसिद्ध है कि चित्रांगद और विचित्र-वीर्य के निःसंतान मर जाने पर सत्यवती ने अपने उसी पहले पुत्र द्वैपायन को (जो आगे चल कर वेदव्यास के रूप में भुवन-विख्यात हुआ) बुलाया और उसे विचित्रवीर्य की विधवा स्त्रियों के साथ नियोग करने को कहा। तदनुसार द्वैपायन ने धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर नाम के तीन पुत्र उत्पन्न किये थे । उन्हीं से कौरव-कुल की बेल फैली थी ।

सोरठा

निलजी कैरव नार, के ऊभी मुळक्या करै ।
आसी कुटुँब उधार, देणा सो लेणा दुरस ॥१६॥

शब्दार्थ—निलजी = निर्लज्जा । ऊभी = खड़ी हुई। दुरस = ठीक वही।

भावार्थ—हे निर्लज्ज कौरव स्त्रियो ! क्या खड़ी-खड़ी हँस रही हो ! जो आज तुम मुझे दे रही हो, ठीक वही तुम्हें लेना होगा । कुटुम्ब में यह उधार पड़ेगा ॥ १६ ॥

सोरठा

जोवौ जेठाणीह, देराणी थैं देखल्यौ ।
होवै लजहाणीह, बीती मो तो बीतसी ॥१७॥

शब्दार्थ—जोवौ (सं० जुवण) = देख लो। देराणी = देवरानी। लज-हाणीह = लज्जा की हानि, लज्जा का नाश। मो = मुझ पर। तो = तुझ पर।

भावार्थ—हे जेठानी ! तुम देख लो और हे देवरानी ! तुम भी देख लो ; आज मेरी लाज जा रही है (लेकिन याद रखना) जो मुझ पर बीती है, वह तुम पर भी बीतेगी ॥ १७ ॥

सोरठा

सासू मंत्र ज साज, पूत जण्या जे पार का।
ज्यां री पारख आज, सांची ह्वैगी सांवरा ॥१८॥

शब्दार्थ—साज = सिद्ध करके। जण्या = पैदा किये। पार का = दूसरों के। ज्यां री = जिनकी। पारख = परीक्षा। व्हेगी = हो गई। सांवरा = हे श्रीकृष्ण !

भावार्थ—मेरी सास कुन्ती ने मंत्र सिद्ध करके जो दूसरों से पुत्र पैदा किये उनकी हे कृष्ण ! आज सच्ची जाँच हो गई ॥ १८ ॥

टि०—कुंती को यह वरदान था कि वह मंत्र द्वारा जिस देवता का स्मरण करे उसी से पुत्र प्राप्त कर सकती है। उसने धर्म, वायु और इन्द्र का आह्वान कर क्रमशः युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये थे और माद्री ने अश्विनीकुमार के अनुग्रह से नकुल और सहदेव नामक दो पुत्र पाये थे। कुन्ती के तथा माद्री के ये पांचों पुत्र पाण्डु से उत्पन्न नहीं थे, इसीलिए द्रौपदी ने यह व्यंग्य कसा है।

सोरठा

पूत सास रे पांच, पांचु इ मौनै सूंपिया।
जिण कुळ री आ जांच, सरम कठै रै सांवरा ॥१९॥

शब्दार्थ—पांचु इ = पांचों को ही। मोनै = मुझको। सूंपिया = सौंप दिया। सरम = शर्म। कठै = कहां। रै = रहे।

भावार्थ—मेरी सास के पाँच पुत्र थे और उसने पाँचों को ही मुझे सौंप दिया ! उस कुल के भले-बुरे की जाँच तो इसी से हो गई ! भला कृष्ण ! बताओ तो सही, उस कुल में शर्म कहां रह सकती है ? ॥ १९ ॥

टि०—जिन दिनों द्रौपदी के स्वयंवर में लक्ष्य भेदकर अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया था, उन दिनों पाँचों पांडव गुप्त रूप से एक ब्राह्मण के यहां माता सहित रहते थे। द्रौपदी को लेकर पाँचों भाई ब्राह्मण के आश्रम पर गये और दरवाजे पर से ही माता को पुकार कर बोले—"मां, आज हम लोग

एक रमणीय भिक्षा लाये हैं।" कुन्ती ने भीतर से कहा—"अच्छी बात है, पाँचों भाई मिल कर भोग करो।" माता के वचन की रक्षा के लिए पांचों भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया था।

सोरठा

गंगा मच्छगंधा'र, कुण जाई व्याही कठै।
घर कुल रा ऐ घाट, सरम कठा सूं सांवरा ॥२०॥

शब्दार्थ—मच्छगंधा'र = और मत्स्यगन्धा को। कुण = किसने। जाई = पैदा किया। व्याही कठै = कहां इनका विवाह हुआ। ऐ घाट = ये ढंग। कठा सूं = कहां से।

भावार्थ—गंगा और मत्स्यगन्धा को किसने पैदा किया और कहाँ इनका विवाह हुआ! जब घर और कुल के ये ढंग हैं तो हे कृष्ण! शर्म कैसे रह सकती है? ॥ २० ॥

टि०—गंगा—कहते हैं कि कुरु देश के राजा शांतनु से गंगा ने इस शर्त पर विवाह किया था कि मैं जो चाहूँगी, वही करूँगी। शांतनु से गंगा को सात पुत्र हुए थे। उन सबको गंगा ने जनमते ही जल में फेंक दिया था। जब आठवां पुत्र उत्पन्न हुआ तब शांतनु ने उसे जल में फेंकने से मना किया। गंगा ने कहा—महाराज, आपने अपनी प्रतिज्ञा तोड़ दी, अतः मैं जाती हूँ। मैंने देव-कार्य की सिद्धि के लिए आप से सहवास किया था। यह आठवाँ पुत्र देवव्रत ही आगे चल कर भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

मछगंधा (मत्स्यगंधा)—यह एक धीवर की लड़की थी। इसके शरीर से मछली की गंध आती थी, इसीलिए उसे 'मत्स्यगंधा' कहा जाता था। एक बार जब वह नाव खे रही थी, पराशर मुनि वहां जा पहुँचे और उसे देख कर आसक्त हो गये। वे उससे बोले कि तुम मेरी कामना पूरी करो। मत्स्य-गंधा ने कहा—महाराज, नदी के दोनों ओर ऋषि मुनि आदि बैठे हुए हैं और हम लोगों को देख रहे हैं। इस पर पराशर मुनि ने अपने तप के बल से कुहरा खड़ा कर दिया जिससे चारों ओर अँधेरा छा गया। उस समय धीवर-कन्या ने फिर कहा—महाराज, मैं अभी कुमारी हूँ। मेरा कौमार-व्रत

नष्ट होने से कैसे मैं अपने घर में रह सकूंगी ? पराशर ने उत्तर दिया—नहीं, तुम्हारा कौमार्य नष्ट नहीं होगा। तुम्हारे शरीर से मछली की जो गंध आती है, वह भी न आवेगी। उसी समय उसके शरीर से सुगंध निकलने लगी और तब से उसका नाम योजनगंधा पड़ गया। इसी योजनगंधा और पराशर के संसर्ग से व्यास का जन्म हुआ था।

सोरठा

कहो पिता हौ कौण, मात गरभ कुण मेलियौ।
देखै बैठो द्रोण, सो की अचरज सांवरा ॥२१॥

शब्दार्थ—हौ = था। कुण = किसने। मेलियौ = रखा, धारण किया। बैठो = बैठा हुआ। की = क्या।

भावार्थ—कहो, द्रोण का पिता तो कौन था और किस माता ने उसे गर्भ में धारण किया था? ऐसा द्रोण यदि इस समय भी बैठा बैठा देख रहा है तो हे कृष्ण ! इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है? ॥ २१ ॥

टि०—द्रोणाचार्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध में महाभारत में निम्नलिखित वृत्त उपलब्ध होता है—

गंगाद्वारं प्रति महान्बभूव भगवानृषिः।
भरद्वाज इति ख्यातः सततं संशितव्रतः ॥ ३३ ॥
सोऽभिषेक्तुं ततो गंगां पूर्वमेवागमन्नदीम्।
महर्षिभिर्भरद्वाजो हविर्धाने चरन्पुरा ॥ ३४ ॥
ददर्शाप्सरसं साक्षाद्घृताचीमाप्लुतामृषिः।
रूपयौवनसंपन्नां मददृप्तां मदालसाम् ॥ ३५ ॥
तस्याः पुनर्नदीतीरे वसनं पर्यवर्तत।
व्यपकृष्टाम्बरां दृष्ट्वा तामृषिश्चकमे ततः ॥ ३६ ॥
तत्र संसक्तमनसो भरद्वाजस्य धीमतः।
ततोऽस्य रेतश्चस्कन्द तदृषिर्द्रोण आदधे ॥ ३७ ॥
ततः समभवद्द्रोणः कलशे तस्य धीमतः।
अध्यगीष्ट स वेदांश्च वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥ ३८ ॥

(आदिपर्व, १३० अध्याय; श्लोक ३३–३८)

गंगाद्वार (हर-द्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे। वे एक दिन गंगा-स्नान करने जाते थे। इसी बीच घृताची नाम की अप्सरा नहा कर निकल रही थी। उसका वस्त्र छूट कर गिर पड़ा। ऋषि उसे देख कामार्त हुए और उनका शुक्रपात हो गया। ऋषि ने शुक्र को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा। उसी द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ, उसका नाम द्रोण पड़ा।

सोरठा

भीखम मात अभाव, मात गंग कींकर मनै।
सो पखहीण सभाव, सेवट सिटग्यौ सांवरा ॥२२॥

शब्दार्थ—कींकर = क्योंकर, कैसे। मनै = मानी जाय। पखहीण = पक्ष-हीन, मातृपक्ष-पितृपक्ष से हीन। सभाव = स्वभाव। सेवट* = अन्त में। सिटग्यौ = लज्जित हुआ।

भावार्थ—भीष्म की माता का पता नहीं चलता; माता के अभाव में गंगा को उसकी माता क्योंकर मान ली जाय? पक्षहीनों का यह स्वभाव ही होता है। अन्त में भीष्म को भी लज्जित होना पड़ा! ॥ २२ ॥

टि० भीष्म की उत्पत्ति के सम्बन्ध में २०वें सोरठे की टिप्पणी देखिये।

सोरठा

ससुर नहीं कोइ सास, अन्ध सभा न्रप अन्ध री।
होणहार उपहास, देखौ भीखम द्रोण रौ ॥२३॥

शब्दार्थ—न्रप = नृप, राजा।

भावार्थ—अन्धे राजा धृतराष्ट्र की यह सभा भी अन्धी ही है; यहाँ न कोई सास है, न ससुर। देखो, होनहार की बात है, आज भीष्म और द्रोण का भी उपहास हो रहा है ॥ २३ ॥

सोरठा

देवकी'र वसुदेव, पख ऊजल़ माता-पिता।
जिण कुल़ जनम अजेय, सो किम बिसरयौ सांवरा ॥२४॥

***मराठी भाषा में 'शेवट' अन्त या समाप्ति के अर्थ में प्रयुक्त शब्द है।**

शब्दार्थ—पख = पक्ष । ऊजल = उज्ज्वल ।

भावार्थ—लेकिन हे श्रीकृष्ण ! तुम मुझे कैसे भूल गये ? देवकी और वसुदेव क्रमशः तुम्हारे माता-पिता हैं और उस अजेय वंश में तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम्हारे मातृ-पक्ष और पितृ-पक्ष दोनों ही उज्ज्वल हैं ॥ २४ ॥

सोरठा

गज नै ग्रहियौ ग्राह, तैं सहाय हुय तारियौ ।
बारी मो बैराह, बैठौ व्हे वसुदेव रा ॥२५॥

शब्दार्थ—गज नै = हाथी को। ग्रहियौ = पकड़ा था। सहाय हुय = सहायक होकर। तैं = तूने। तारियौ = तार दिया, उद्धार किया। बैराह व्हे = बधिर होकर। बैठो = बैठ गया। वसुदेव रा = हे वसुदेव के पुत्र !

भावार्थ—हे वसुदेव के पुत्र ! जब ग्राह ने हाथी को पकड़ लिया था तब तुमने ही सहायक होकर उसका उद्धार किया था। अब जब मेरी बारी आई तभी बहरे होकर कैसे बैठ गये ॥ २५ ॥

अलंकार—पहले चरण में वृत्यनुप्रास ।

सोरठा

रटियौ हरि गजराज, तज खगेस धायौ तठै ।
आ कँइ देरी आज, करी इती तैं कान्हड़ा ॥२६॥

शब्दार्थ—तठै (सं० तत्र) = वहां। आ = यह। कँइ = क्यों। इती = इतनी। कान्हड़ा = हे कृष्ण !

भावार्थ—जब गजराज ने रक्षार्थ विष्णु भगवान को पुकारा तब वे गरुड़ को छोड़कर वहाँ दौड़ गये थे किन्तु हे कृष्ण ! आज तुमने यह इतनी देर क्यों कर दी ? ॥ २६ ॥

सोरठा

लड़कापण प्रहलाद, आद अंत कीधौ अवस ।
उण री राखी याद, सिंघनाद कर सांवरा ॥२७॥

शब्दार्थ—लड़कापण = बाल्यावस्था ।

भावार्थ—प्रहलाद बालक था। तुमने आदि से अन्त तक उसकी रक्षा

की। (जब प्रह्लाद के पिता हिरण्यकशिपु ने उससे यह पूछा कि क्या इस खम्भे में भी तुम्हारा भगवान है तो भगवान उसी समय नरसिंहरूप धारण कर खम्भे में से प्रकट हो गये थे और उन्होंने हिरण्यकशिपु का बध कर डाला था।) इसी बात को लक्ष्य में रख कर द्रौपदी कह रही है कि हे श्याम ! तुम अपने भक्त प्रह्लाद को कभी भूले नहीं, अपने भक्त की इच्छानुसार सिंहनाद करके तुम प्रकट हो गये थे और उसकी रक्षा की थी ॥ २७ ॥

सोरठा

अबळा बाळक एक, अरज करूं ऊभी अठै।
टाबर ध्रुव री टेक, तैं राखी वसुदेव तण ॥२८॥

शब्दार्थ—अठै = यहां। टाबर = बच्चे। तैं = तूने। वसुदेव तण = वसुदेव के (पुत्र !) ॥ २८ ॥

भावार्थ—अबला और बालक तो एक समान होते हैं; मैं यहाँ खड़ी हुई आपसे प्रार्थना कर रही हूँ। हे वसुदेव के पुत्र ! बालक ध्रुव की टेक तूने ही रखी थी। (ध्वनि यह है मैं भी तो अबला हूँ, मेरी भी पुकार सुन।) ॥ २८ ॥

सोरठा

लारै भगतां लाज, लंकागढ रघुपत लड़्या।
करण विभीखण काज, सिर दस काट्या सांवरा ॥२९॥

शब्दार्थ—लारै = पीछे। करण = करने के लिए।

भावार्थ—भक्तों की लाज रखने के लिए लंकागढ़ में भगवान् रामचन्द्र ने युद्ध किया था। हे कृष्ण ! अपने भक्त विभीषण के कार्य के लिए उन्होंने रावण के दस सिर काट डाले थे ॥ २९ ॥

सोरठा

रळियौ जळ सुरराज, धर अंबर इक धार सूं।
करण अभय ब्रज काज, गिरि नख धार्‌यौ कान्हड़ा ॥३०॥

शब्दार्थ—रळियौ = बरसाया।

भावार्थ—जब इन्द्र ने आसमान से पृथ्वी तक निरवच्छिन्न (मूसलाधार)

वर्षा की तो हे कृष्ण ! व्रज को अभय करने के निमित्त तूने गोवर्धन पर्वत को अपने नख पर धारण कर लिया था ! ॥ ३० ॥

सोरठा

विप्र सुदामा बार, कोड़ां धन लायौ किसन।
बधण चीर विसतार, सरदा घटगी सांवरा ॥३१॥

शब्दार्थ—बार = वक्त। बधण = बढ़ाने के लिये। विसतार = विस्तार। सरदा (सं० श्रद्धा) = शक्ति, सामर्थ्य।

भावार्थ—विप्र सुदामा की जब बारी आई तब तो हे कृष्ण ! उसके लिए तुम करोड़ों का धन ले आये किन्तु मेरे चीर का विस्तार बढ़ाने में ही हे श्याम ! तुम्हारी शक्ति घट गई ! ॥ ३१ ॥

सोरठा

व्रज राखी व्रजराज, इंद्र गाज कर आवियौ।
लेवै खल़ मो लाज, आज उबारौ ईसरा ॥३२॥

शब्दार्थ—आवियौ = आया। मो = मेरी। उबारौ = रक्षा करो। ईसरा = हे ईश्वर !

भावार्थ—जब व्रज पर इन्द्र गर्ज कर आया था तो हे व्रजराज ! तुमने व्रज की रक्षा की थी। आज यह दुष्ट दुःशासन मेरी लाज ले रहा है; हे ईश्वर ! मेरी रक्षा करो ॥ ३२ ॥

सोरठा

जाण किसी अणजाण, तीन लोक तारणतरण।
है द्रौपद री हाण, सरम धरम री सांवरा ॥३३॥

शब्दार्थ—जाण किसी = कौन सा ज्ञेय पदार्थ। अणजाण = अज्ञात। तारणतरण = भवसागर से पार करने वाला।

भावार्थ—हे श्याम ! कौनसा ज्ञेय पदार्थ तुम्हारे लिए अज्ञात है ? तुम त्रिभुवन रूपी समुद्र से पार कराने वाले हो। द्रौपदी की शर्म और उसके

धर्म की हानि हो रही है। (तुम्हारे ही हाथों रक्षा हो सकती है, मुझ अबला के पास अब कोई चारा नहीं रहा।) ॥ ३३ ॥

सोरठा

अब छोगाळा ऊठ, काळा तूँ प्रतपाळ कर।
पांचाळी री पूठ, चढ रखवाळी चतुरभुज ॥३४॥

शब्दार्थ—छोगाळा = छोगे वाले चतुर्भुज देव ! काळा = हे कृष्ण ! प्रतपाळ = रक्षा। पांचाली री पूठ चढ = द्रौपदी की पीठ पर (रक्षार्थ) आ। रखवाळी = रक्षार्थ।

भावार्थ—हे छोगे वाले देव ! हे कृष्ण ! तू अब उठ और रक्षा कर। हे चतुर्भुज देव ! द्रौपदी की पीठ पर रक्षार्थ आ ॥ ३४ ॥

सोरठा

हारया कर हल्लोह, मछ अरजुन बेध्यौ मुदै।
दिन उण रो बदलोह, साझै मोसूं सांवरा ॥३५॥

शब्दार्थ—हल्लोह = शोरगुल। मछ = मत्स्य। बेध्यौ = बेधा। मुदै = प्रधानतः। साझै = लिया जा रहा है। मोसूं = मुझ से।

भावार्थ—(कौरवादि) हल्ला करके हार गये थे; स्वयंवर के समय मत्स्य को तो प्रधानतः अर्जुन ने ही वेधा था। उस दिन का वैर-बदला हे श्याम ! आज मुझसे लिया जा रहा है ॥ ३५ ॥

सोरठा

आसा तज आयाह, पाछा कौरव पावणा।
उण दिन रा दायाह, साझै मोसूं सांवरा ॥३६॥

शब्दार्थ—पावणा = पाहुने। दायाह = दांव।

भावार्थ—उस दिन पाहुने कौरव आशा छोड़ कर लौटे थे। हे सांवरे ! उस दिन का दाँव, ये मुझसे लेते हैं ॥ ३६ ॥

सोरठा

लेवै अबळा लाज, सबळा हुय बैठां सको।
गरढ सभा पर गाज, सुणतां राळौ सांवरा ॥३७॥

शब्दार्थ—सको = सब कोई। सबला बैठां हुय = सबलों के बैठे हुए होने पर भी। गरढ = वृद्धों की। सुणतां = सुनते ही। रालौ = डाल दो।

भावार्थ—सब सबलों के बैठे हुए होने पर भी (आज यह दुष्ट दुःशासन) मुझ अबला की लाज ले रहा है। मेरी पुकार सुनते ही हे श्याम ! इस वृद्धों की सभा पर वज्र डाल दो ॥ ३७ ॥

सोरठा

द्रौपद हेलौ देह, वेगौ आ वसुदेव रा।
लाज राख जस लेह, लाज गियां व्रद लाजसी ॥३८॥

शब्दार्थ—द्रौपद = द्रौपदी। हेलौ देह = पुकारती है। वेगौ = शीघ्र। राख = रख कर। जस लेह = यश लो। गियां = जाने पर। व्रद = विरुद।

भावार्थ—द्रौपदी पुकारती है कि हे वसुदेव के पुत्र ! शीघ्र आओ। मेरी लज्जा की रक्षा करके यश लो। मेरी लज्जा जाने से तुम्हारे ही विरुद की हँसी होगी ॥ ३८ ॥

सोरठा

सारौ मिलग्यौ साथ, कूड़ बिचारी कैरवां।
हरि ! इज्जत रै हाथ, सह मिल घालै सांवरा ॥३९॥

शब्दार्थ—सारौ = सब। साथ = समूह। कूड़ = बुरी। कैरवां = कौरवों ने। सह = सब। घालै = डालते हैं।

भावार्थ—सबके सब इस दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गये; कौरवों ने बुरा विचार किया। हे हरि ! हे श्याम ! ये सब मिल कर मेरी इज्जत पर हाथ डाल रहे हैं॥ ३९ ॥

सोरठा

ऐ मिल दुसटी आज, पाल, अनारी पालटै।
लागै कुल नै लाज, सांच रखाज्यौ सांवरा ॥४०॥

शब्दार्थ—दुसटी = दुष्ट। पाल = रोक। पालटै = बदल रहे हैं। कुल नै = कुल को।

भावार्थ—हे श्याम ! ये दुष्ट अनाड़ी कौरव आज (धर्म का तख्ता)

पलट रहे हैं, इन्हें रोक। भरतकुल आज लज्जित हो रहा है, हे कृष्ण! सत्य की रक्षा करवाना ॥ ४० ॥

टि० 'पाल अनारी पालटै' का यह अर्थ भी किया जा सकता है—'ये अनाड़ी मर्यादा को पलट रहे हैं।'

अलंकार—'पाल' और 'पालटै' में यमक।

सोरठा

ओठा दिन आयाह, खोटा मग कैरव खड़्या।
जुध पंडवजायाह, साय जिताया सांवरा ॥४१॥

शब्दार्थ—ओठा = उल्टे। जुध = युद्ध में। पंडवजायाह = पाण्डवों को। साय = सहायता के द्वारा।

भावार्थ—हे श्याम! उल्टे दिन आ गये हैं; कौरव खोटे रास्ते पर खड़े हैं। युद्ध में सहायता करके हे कृष्ण! तुमने सदा पाण्डवों को जिताया था। (आज भी उन पर भीड़ पड़ी है, तेरी ही रक्षा का भरोसा है।) ॥ ४१ ॥

सोरठा

सासू आरया साल, जाया पांचूं जो मरद।
खोटौ रचियौ ख्याल, सह धर आया सांवरा ॥४२॥

शब्दार्थ—अरियां साल = शत्रुओं को दुःखदायी। खोटो ख्याल = (जुए का) बुरा खेल। सह = सब कुछ। धर आया = रख आये।

भावार्थ—मेरी सास ने शत्रुओं को दुःख पहुँचाने वाले जो पांच वीर पैदा किये थे, उन्होंने जुए का बुरा खेल रचा; उन्होंने दांव पर सब कुछ लगा दिया! अब वे कहीं के न रहे! ॥ ४२ ॥

सोरठा

मो मन पड़ियौ मोच, आव कह्यां आयौ नहीं।
साड़ी रौ नहँ सोच, सोच विरद रौ सांवरा ॥४३॥

शब्दार्थ—मो मन = मेरे मन में। मोच = ठेस। कह्यां = कहने पर। आव = आओ।

भावार्थ—'आओ' कहने पर तुम नहीं आये, इससे मेरे मन को बड़ी ठेस

पहुंची हैं । हे श्याम ! मुझे अपनी साड़ी की चिन्ता नहीं है, मुझे तुम्हार विरुद की ही चिन्ता हो रही है ॥ ४३ ॥

सोरठा

लेतां तिरिया लाज, पति बोदौ आडौ पड़ै ।
ऐ नर बैठा आज, सिंघ सिटाया स्याल़ सा ॥४४॥

शब्दार्थ—लेतां = लेते समय । बोदौ = दुर्बल । आडौ पड़ै = विरोध करता है । सिटाया = सिटपिटाये-से, लज्जित-से । स्याल़ सा = शृगाल की भांति ।

भावार्थ—जब स्त्री की लज्जा ली जा रही हो तो दुर्बल पति भी विरोध करता है किन्तु यहाँ तो मेरे पति नर-सिंह होकर भी गीवड़ की भाँति सिट-पिटाये-से बैठे हैं ॥ ४४ ॥

अलंकार—विशेषोक्ति ; चौथे चरण में वृत्यनुप्रास ।

सोरठा

होसी जग में हास, द्रोपद नागी देखतां ।
साड़ी पहली सास, सटकै लीजे सांवरा ॥४५॥

शब्दार्थ—नागी = नंगी । देखतां = देखते हुए । सास = श्वास, प्राण । सटकै = शीघ्र ही ।

भावार्थ—द्रौपदी को नंगी देखने पर संसार में हँसी होगी । इसलिए हे श्याम ! साड़ी के पहले मेरे श्वास (मेरे प्राण) ले लेना अर्थात् जीते जी मुझे नंगी न होने देना ॥ ४५ ॥

अलंकार—पर्यायोक्त ।

सोरठा

देखै भीखम द्रोण, जेठ करण देखै जठै ।
को, हर, वरजै कौण, लाज-रुखाल़ा लाज लै ॥४६॥

शब्दार्थ—जठै = जहां । को = कहो । वरजै = मना करे । कौण = कौन । रुखाल़ा = रक्षक ।

भावार्थ—जहाँ भीष्म और द्रोण देख रहे हैं, जहाँ जेठ कर्ण देख रहे हैं; हे हरि ! कहो, जब लाज के रखवाले ही लाज ले रहे हैं तब उन्हें बरजे कौन ? ॥ ४६ ॥

टि०—मिलाइये (१) **'बाग का क्या हाल हो जब माली ही पैमाली करे।'**
(२) **कल्याणं तत्र किं ब्रूहि रक्षको यत्र भक्षकः।**

सोरठा

रजस्वला नारीह, कथा गोप किण सूं कहूं।
समझौ हरि सारीह, (म्हारी) सरम मरम री सांवरा ॥४७॥

शब्दार्थ—गोप = गुप्त।

भावार्थ—मैं रजस्वला नारी हूँ। अपनी गुप्त कथा किससे कहूँ? हे हरि! हे सांवरे! मेरी शर्म का सब मर्म तुम समझते हो ॥ ४७ ॥

सोरठा

द्रोपत दुखियारीह, पूकारी अबलापणै।
मदती हर म्हारीह, करणाकर करस्यो करां ॥४८॥

शब्दार्थ—अबलापणै = अबला होने के कारण। मदती = मदद। करणाकर = करुणाकर। करस्यो = करोगे। करां = कब।

भावार्थ—दुखियारी द्रौपदी ने अबला होने के कारण पुकार की। हे हरि! हे करुणाकर! मेरी मदद कब करोगे? ॥ ४८ ॥

अलंकार—चौथे चरण में वृत्यनुप्रास।

सोरठा

मिनिया मंजारीह, अगन प्रजाली ऊबरचा।
वरती मो बारीह, सुणै क बहरो साँवरा ॥४९॥

शब्दार्थ—मिनिया = छोटे-छोटे बच्चे। मंजारीह = बिल्ली के। अगन = अग्नि। प्रजाली = प्रज्वलित। ऊबरचा = बच गये थे। वरती = बीत चली। सुणै क = सुनते हो या।

भावार्थ—आग जला देने पर भी बिल्ली के छोटे-छोटे बच्चे बच गये थे। मेरी बारी बीत चली। हे साँवरे! कुछ सुनते भी हो या बिलकुल बहरे हो? ॥ ४९ ॥

टि०—हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद एक दिन अपने पिता के राज्य में

भ्रमणार्थ निकला । घूमता-घूमता वह वहां पहुँचा जहां एक कुम्हार अपने आंवे के पास बैठा हुआ था। उसकी पत्नी भी उसके साथ थी। पत्नी को विचार-मग्न देख कर प्रह्लाद ने इसका कारण जानना चाहा । कुम्हार की स्त्री ने कहा कि इस आंवे के अन्दर बिल्ली के बच्चे रह गये हैं। भगवान की कृपा से उनपर बिलकुल भी आंच न आवे, यही मेरी अन्यतम इच्छा है। जब आंवे में से बर्तन निकाले जाने लगे तो प्रह्लाद ने देखा कि बिल्ली के बच्चे बिलकुल सुरक्षित हैं। इस दृश्य को देख कर प्रह्लाद की भगवान् के प्रति श्रद्धा अधिकाधिक बढ़ती गई । 'मिनिया मंजारीह अगन प्रजाळी ऊबरया' में इसी कथा की ओर संकेत है ।

सोरठा

दुसटां रचियौ दाव, द्रौपद नागी देखवा ।
अब तो बेगो आव, साय करण नै सांवरा ।।५०।।

शब्दार्थ—दुसटां = दुष्टों ने । रचियौ = रचा है । नागी = नंगी । देखवा = देखने के लिए । बेगो = शीघ्र । साय = सहायता । करण नै = करने के लिए ।

भावार्थ—दुष्टों ने द्रौपदी को नंगी देखने के लिए दाँव रचा है । हे साँवरे ! अब तो सहायता करने के लिए शीघ्र आ ।। ५० ।।

सोरठा

चित में दुस्ट कुचाव, औ निलज्ज लायौ अठै ।
अब गिरधर झट आव, साय करण नै सांवरा ।।५१।।

शब्दार्थ—साय करण नै = सहायता करने के लिए ।

भावार्थ—इस दुष्ट के चित्त में बुरा चाव है और यह निर्लज्ज मुझे यहाँ ले आया है । हे गिरिधर ! हे साँवरे ! सहायता करने के लिए अब शीघ्र ही आ ।। ५१ ।।

सोरठा

दोख्यां लाग्यौ दाव, द्रोपत-सुत विनवै खड़ी ।
अब तो बेगो आव, साय करण नै सांवरा ।।५२।।

शब्दार्थ—दोखयां = शत्रुओं का । द्रोपत-सुत = द्रुपद-सुता । साय = सहायता । बेगो = शीघ्र ।

भावार्थ—शत्रुओं का दांव लग गया है। द्रुपद-सुता खड़ी विनती करती है कि हे सांवरे ! अब तो सहायता करने के लिए शीघ्र आ ॥ ५२ ॥

सोरठा

होय सभा हमगीर, दुय हाथां खैंचै दुसट।
चल्यौ पुराणौ चीर, सिर सूं चाल्यौ सांवरा ॥५३॥

शब्दार्थ—हमगीर = जोरदार। दुय हाथां = दोनों हाथों से। चल्यौ = जीर्णशीर्ण।

भावार्थ—सभा में जोरदार होकर दुष्ट दुःशासन दोनों हाथों से द्रौपदी का चीर खींचने लगा। हे सांवरे ! यह जीर्ण-शीर्ण पुराना वस्त्र सिर से अलग हो रहा है ॥ ५३ ॥

सोरठा

तैं अहल्या तारीह, सिला हुती पति स्राप सूं।
वरती मो वारीह, सोवै क जागै सांवरा ॥५४॥

शब्दार्थ—हुती = हो गई थी। स्राप सूं = शाप से। वरती = बीत चली।

भावार्थ—जो अहल्या पति के शाप से शिला हो गई थी, उसे तूने तार दिया था। मेरी बारी बीत चली। हे सांवरे ! तू सो रहा है या जगवा है ? ॥ ५४ ॥

सोरठा

आगै भूप अनेक, खप्पाणा रिण खेत में।
टींटोड़ी री टेक, सखरी राखी सांवरा ॥५५॥

शब्दार्थ—आगै = पहले, भूतकाल में। खप्पाणा = खप गये। टींटोड़ी = टिट्टिभ। सखरी = भली, अच्छी।

भावार्थ—भूतकाल में बहुत से राजा युद्ध-क्षेत्र में खप गये किन्तु हे सांवरे ! टिट्टिभ की टेक की तूने अच्छी रक्षा की ॥ ५५ ॥

टि०—एक बार टिट्टिभ-दम्पति की अनुपस्थिति में समुद्र टिट्टिभ के

अण्डे बहा कर ले गया। जब टि्टिभ-दम्पति वहां पहुँचे तो वे समुद्र की इस करतूत पर बहुत रुष्ट हुए और अपनी-अपनी चोंच से समुद्र का जल उलीचने लगे। उनको ऐसा करते देखकर दूसरे पक्षियों ने भी इस कार्य में उनकी सहायता की। जब पक्षिराज गरुड़ को इस बात का पता चला तो वे भी इस कार्य में जुट गये। गरुड़ तो बिष्णु भगवान के वाहन ठहरे, अन्त में स्वयं भगवान को भी इस कार्य की सिद्धि के लिए आना पड़ा। विवश होकर समुद्र ने अण्डे वापिस कर दिये। इसी घटना को लक्ष्य में रख कर कहा गया है—"टींटोड़ी री टेक, सखरी राखी सांवरा।"

सोरठा

चित में कीजे चेत, वेगो आ वसदेव रा।
खरो मूझ लज-खेत, ऊभां धणियाँ ऊजड़ै ॥५६॥

शब्दार्थ—लज-खेत = लज्जा रूपी खेत। ऊभां धणियां = मालिकों के खड़े हुए। ऊजड़ै = उजड़ रहा है।

भावार्थ—हे वसुदेव के बेटे! चित्त में चेतकर और जल्दी आ। (कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि) मेरा श्रेष्ठ लज्जा-रूपी खेत, मालिकों के खड़े हुए, उजड़ रहा है॥ ५६॥*

अलंकार—तीसरी विभावना (प्रतिबन्धक होते हुए भी कार्य का होना वर्णित) 'लज-खेत' में रूपक।

सोरठा

धींगां देवै ध्यान, रांकां सूं रूठो फिरै।
पासे नहँ परधान, समझावै कुण सांवरा ॥५७॥

शब्दार्थ—धींगां = जबरदस्तों पर। रांकां सूं = रंकों से, गरीबों से। पासे = पास में। नहँ = नहीं। परधान = मंत्री। कुण = कौन।

भावार्थ—हे सांवरे! जो जबरदस्त हैं उन पर तो तू ध्यान देता है और

*इस सोरठे के उत्तरार्द्ध को पढ़ कर 'खेती धणियां सेती' नामक राजस्थानी कहावत का स्मरण हो जाता है।

जो गरीब हैं उनसे रूठा फिरता है। पास में तुम्हारे कोई मंत्री भी तो नहीं है, तुम्हें समझावे भी तो कौन ? ॥ ५७ ॥

सोरठा

लाखा ग्रह री लाय, तैं पंडव राख्या त दिन ।
बडा किया बन मांह, साथ न छोडयौ सांवरा ॥५८॥

शब्दार्थ—लाखा ग्रह = लाक्षागृह। लाय = अग्नि । तैं = तुमने । पंडव = पांडवों को । राख्या = रक्षा की । त दिन = उस दिन । बडा किया = (पाल-पोस कर) बड़ा किया ।

भावार्थ—उस दिन लाक्षागृह की अग्नि से तूने पाण्डवों की रक्षा की । बन में पाल-पोस कर उन्हें बड़ा किया । हे सांवरे ! तूने कभी उनका साथ नहीं छोड़ा ॥ ५८ ॥

सोरठा

पाल्यो जहर पिवाय, भीम गंग पटक्यो हुतो ।
पनग लोक परणाय, साथे लायो सांवरा ॥५९॥

शब्दार्थ—पाल्यो = पाला । पिवाय = पिला कर । पटक्यो हुतो = डाल दिया था। पनग लोक = नाग-लोक, पाताल । परणाय = विवाह करवा कर ।

भावार्थ—विष पिला कर भीम को (कौरवों ने) गंगा में डाल दिया था। उसको भी तूने पाला। पाताल में उसका विवाह करवा कर उसे अपने ही साथ तू ऊपर ले आया ॥ ५९ ॥

सोरठा

तन मो तिल तेतोह, आज सभा मझ ऊघड़ै ।
हर-पंडव हेतोह, हूँ जाणूं होतो नहीं ॥६०॥

शब्दार्थ—तिल तेतोह = तिल उतना । मझ = मध्य में । ऊघड़ै = बेपर्दा हो जाय । हेतोह = हेत, प्रेम । होतो नहीं = नहीं था ।

भावार्थ—आज इस सभा के बीच यदि मेरा शरीर तिल भर भी बेपर्दा हो गया तो मैं समझूंगी कि हरि और पाण्डवों में कभी प्रेम था ही नहीं ! ॥६०॥

सोरठा

वहियो गज वारीह, तूं रुकमण प्यारी तजे।
मदती हर म्हारीह, धजबंधी धारी नहीं ॥६१॥

शब्दार्थ—वहियो = चला। तजे = छोड़ कर।

भावार्थ—गज की बारी आने पर तुम प्रिया रुक्मिणी को भी छोड़ कर चले थे। हे हरि! हे ध्वजधारी! मेरी ही मदद तुमने नहीं की॥ ६१॥

सोरठा

सुरभी दीनो स्राप, पाप तिको भुगतण पड़्यो।
एक रिछक हर आप, सदा वचायी सांवरा ॥६२॥

शब्दार्थ—सुरभी = गाय। तिको = उसका। भुगतण पड़्यो = भोगना पड़ा। रिछक = रक्षक।

भावार्थ—गाय ने जो शाप दिया उसका फल भोगना पड़ा। हे हरि! एक आप ही रक्षक हैं। आपने सदा पहले रक्षा की है॥ ६२॥

सोरठा

पंच महा बरवीर, वचन कपट सूं बांधिया।
जिण दिन खिंचसी तीर, दिन उण आंख्यां देखसी ॥६३॥

शब्दार्थ—सूं = से। बांधिया = बद्ध। दिन उण = उस दिन।

भावार्थ—ये पांचों महावीर अभी तो कपट-वचन से बद्ध हैं। जिस दिन इनके तीर खिचेंगे, उस दिन अपनी आँखों से देख लेना, वे कितनी वीरता दिखलायेंगे॥ ६३॥

सोरठा

द्रौपद दक्कालाह, दुसट-सभा-बिच दाखवै।
लायौ नंदलालाह, चीर दुसाला चौगणा ॥६४॥

शब्दार्थ—दक्कालाह = ललकार के शब्द। दाखवै = कहती है।

भावार्थ—द्रौपदी दुष्टों की सभा में ललकार के वचन कह रही है। उनको सुन कर नन्द का लाल चौगुने चीर और दुशाले ले आया॥ ६४॥

सोरठा

हारचौ खेंचणहार, हर देतो हारचौ नहीं।
वध्यो चीर विसतार, बाँवन हाथां वैंत ज्यूं ॥६५॥

शब्दार्थ—वैंत = नाप ।

भावार्थ—खींचने वाला थक गया पर भगवान देते हुए नहीं थका । चीर का विस्तार बढ़ चला मानो भगवान वामन अपने हाथों से उसे नाप रहे हैं ॥६५॥

सोरठा

खींचो खींचणहार, मन धोको राखे मती।
समपै सरजणहार, सही बजाजी सांवरो ॥६६॥

शब्दार्थ—खींचणहार = हे खींचनेवाले ।

भावार्थ—हे खींचने वाले ! खींच ले । मन में यह धोखा न रख (कि मैंने यथेच्छ खींचा नहीं ।) देने वाला सच्चा बजाज सृष्टिकर्त्ता भगवान् देगा ॥ ६६ ॥

सोरठा

धरती पड़चो ढिगास, अंबर अंबर सूं अडचो।
आयो पूरण आस, सही बजाजी साँवरो ॥६७॥

शब्दार्थ—ढिगास = ढेर । पूरण आस = आशा पूर्ण करने के लिए ।

भावार्थ—धरती पर ढेर लग गया। कपड़े का ढेर आकाश से जा लगा। सच्चा बजाज सांवरा आशा पूर्ण करने के लिए आ गया ॥ ६७ ॥

अलंकार—दूसरे चरण में यमक ।

सोरठा

मंडचौ नंदघर मेल, ब्रज में बँटै बधावणा।
तट जमना रै तीर, रमियौ वसुदे राव उत ॥६८॥

शब्दार्थ—उत = पुत्र ।

भावार्थ—नन्द के घर में समारोह होने लगा; ब्रज में बधाइयां बँटने लगीं। वसुदेव का पुत्र यमुना के किनारे रास में रम गया ॥ ६८ ॥

सोरठा

काजल़ माच्यौ कीच, जल़ काजल़ भेल़ा जठै ।
वसियौ हिवड़ा बीच, रसियौ वसुदे राव उत ॥६९॥

शब्दार्थ—काजल़ = कज्जल । भेल़ा = इकट्ठा । वसियौ = बस गया । हिवड़ा = हृदय । रसियौ = रसिक । वसुदेराव उत = वसुदेव राय का पुत्र श्रीकृष्ण । जठै = जहां ।

भावार्थ—जहाँ जल और कज्जल इकट्ठे हुए, वहां कज्जल का कीचड़ मच गया । वसुदेव का पुत्र रसिक श्रीकृष्ण सबके हृदय में बस गया ॥ ६९ ॥

अलंकार—दूसरे चरण में यमक ।

दोहा

पहली केस खिचाय पुनि, अवस बढायौ चीर ।
आयौ लाज गमाय नै, आखर जात अहीर ॥७०॥

शब्दार्थ—गमाय नै = गँवा कर, खोकर ।

भावार्थ—द्रौपदी की मधुर उपालम्भोक्ति है—पहले मेरे केश दुःशासन द्वारा खिंचने दिये, फिर अवश्य चीर को बढ़ाया । दुष्ट दुःशासन ने मेरे बाल खींचे, इससे मेरी लज्जा गई । कृष्ण आया तो सही लेकिन मेरी लज्जा को गँवाकर आया, आखिर जाति का अहीर ही तो ठहरा ! ॥ ७० ॥

दोहा

पण राखण आया प्रभू, भल अबल़ा री भीर ।
दस हजार गज बल़ घटयौ, घटयौ न दस गज चीर ॥७१॥

शब्दार्थ—पण राखण = प्रण की रक्षा के लिए ।

भावार्थ—प्रभु अपने प्रण की रक्षा के लिए आये; संकट के समय उन्होंने अबला की सहायता की, यह अच्छा ही किया । चीर खेंचते खेंचते उस दुःशासन का (जिसमें दस हजार हाथियों का बल था) बल घट गया किन्तु द्रौपदी का दस गज चीर न घटा ॥ ७१ ॥

टि०—इस प्रसंग पर ब्रज भाषा के एक कवि ने क्या ही सुन्दर

कवित्त लिखा है जिसके अंतिम चरण को पढ़कर तो आँखों के सामने एक दृश्य-सा छा जाता है—

"पाय अनुसासन दुसासन कै कोप धायो,
द्रुपद-सुता को चीर गहे भीर भारी है।
भीषम, करन, द्रोन बैठे ब्रतधारी तहां,
कामिनी की ओर काहू नेक न निहारी है।
सुनिकें पुकार धाये द्वारका तें जदुराई,
बाढ़त दुकूल खेंचे भुजबल हारी है।
सारी बीच नारी है, कि नारी बीच सारी है,
कि सारी ही की नारी है कि नारी ही की सारी है।"

सोरठा

पांडव ब्रद पाळेह, ऊजाळे ब्रद आगलो।
देखो नँद ग्वाळेह, काळे मो ऊपर करी ॥७२॥

शब्दार्थ—ब्रद = विरुद। पाळेह = पाल कर। ऊजाळे = उज्ज्वल करके। आगलो = अगला। काळे = काले। मो ऊपर करी = मेरी सहायता की।

भावार्थ—पाण्डवों का विरुद पाल कर कृष्ण ने अपने अगले विरुद को उज्ज्वल किया। देखो, नन्द के पुत्र काले ग्वाल (श्रीकृष्ण) ने मेरी सहायता की ॥ ७२ ॥

द्रौपदी-विनय अथवा करुण-बहत्तरी सम्पूर्ण श्री रामनाथजी कविया री कही।

द्रौपदी-विनय अथवा करुणा-बहत्तरी

के

सोरठों की प्रतीकानुक्रमणिका

क्रम संख्या		सोरठा-संख्या

परिशिष्ट (क)

रूपान्तर

सोरठा संख्या १५

ब्यास बिगाड़्यो बंस, कैरव पांडव केहरो।
असली ह्वेता अंस, (तो) सरमँहि आती सांवरा॥

सोरठा संख्या १६

अै तो कुटुँब उधार, लेणां सो देणां पड़ै।

सोरठा संख्या १८ के बाद नीचे लिखा सोरठा कहीं कहीं मिलता है—

जे सासू जणतीह, सुसरा रो एकहि सुतन।
तो मूंछां तणतीह, साड़ी खिंचतां सांवरा॥

सोरठा संख्या १९

पति सासू रै पांच, पांच मने ही सौंपिया।
जिण कुल़ री आ जांच, सांच कठा सूं सांवरा॥

सोरठा संख्या २०

गंगा · मछ्गंधाह, कुण जाई न ब्याई कठै।
(जांरा) धुर कुल़ अै धंधाह, सरम कठा सूं सांवरा॥

सोरठा नं० २७

उण रो रखियो वाद, सिंहनाद कर सांवरा॥

सोरठा नं० ३१

विप्र सुदामा बार, कौड़ां धन लायो कठा।
बंधण चीर बिसतार, (थारी) सरधा घटगी सांवरा॥

सोरठा नं० ३४

अब छोगाल़ा ऊठ, काल़ा प्रतपाल़ा करण।
पखराल़ा री पूठ, चढ़ रखवाल़ा चतुरभुज॥

सोरठा नं० ४०

अै मिल दुसटी आज, पाज अनादी पालट ।
लागै कुल नैं लाज, सांच रखाजे सांवरा ॥

सोरठा नं० ४१

जुध पांडव जायाह, सदा जिताया सांवरा ॥

सोरठा नं० ५५ की दूसरी अन्तर्गत कथा—टिट्टिभ के अंडे महाभारत के युद्धक्षेत्र में पड़े हुए थे । युद्ध प्रारम्भ होने पर अर्जुन के बाण से भगदत्त के हाथी का गजघंट टूट कर उन अंडों को बचाते हुए उन पर गिर पड़ा । युद्ध में असंख्य हाथी, घोड़े, सिपाही धराशायी होकर ढेर के ढेर पड़े हुए थे परन्तु उन अंडों को आँच तक नहीं आई; गजघंट के नीचे दबे-दबे वे परवरिश पा गये । नीचे के कवित्त में भी इसकी ओर संकेत किया गया है—

"गिरि को उठाय वृज वाल को बचाय लीनों
राख्यो व्रत नेम धर्म पांडव की नारी को
राख्यो गजघंटा तरे बालक विहंगम को
भारत में राख्यो प्रण भीष्म ब्रह्मचारी को·····"

अशुद्ध	पृष्ठ	शुद्ध
सरावट	३	सटावट
विजयसिहजी	२ और ४	विनयसिहजी

——

परिशिष्ट (ख)

श्री द्रौपदी अष्टक*

घूंटिहैं हलाहल कै बूड़िहैं जलाहल में,
हम ना कुनाम कौ कुलाहल करावेंगी।
कहै रतनाकर न देखि पाइबे की तुम्हें,
पीर हूँ गँभीर लिए संग हीं सिधावेंगी ॥
हाय दुरजोधन की जंघ पै उघारी बैठि,
ऐंठि पुनि कैसें जग आनन दिखावेंगी।
बार बार द्रौपदी पुकारति उठाए हाथ,
नाथ होत तुमसे अनाथ ना कहावेंगी ॥१॥

सांतनु की सांति कुल क्रांति चित्र-अंगद की,
गंग-सुत आनन की कांति बिनसाइगी।
कहै रतनाकर करन द्रोन बीरनि की,
स्रौन-सुनी धरम धुरीनता बिलाइगी ॥
द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती सबै,
उतरी हमारी सारी माहिं कफनाइगी।
द्रुपद महीपति की पंच पतिहूँ की हाय,
पंच पतिहूँ के पतिहूँ की पति जाइगी ॥२॥

---

*ये कवित्त स्व० श्री जगन्नाथदास रत्नाकर द्वारा विरचित हैं और काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित 'रत्नाकर' नामक बृहत् काव्य-संग्रह से साभार उद्धृत किये गये हैं।

पांडु की पतोहू भरी स्वजन सभा में जब,
आई एक चीर सौं तौ धीर सब ख्वै चुकी ।
कहै रतनाकर जो रोइबो हुतौ सो तबै,
धाड़ मारि बिलखि गुहार सब र्‌वै चुकी ।।
झटकत सोऊ पट बिकट दुसासन है,
अब तौ तिहारी हूँ कृपा की बाट ज्वै चुकी ।
पाँच पाँच नाथ होत नाथनि के नाथ होत
हाय हौं अनाथ होति नाथ बस ह्वै चुकी ।।३।।

भीषम कौं प्रेरौं कर्नहूँ कौ मुख हेरों हाय,
सकल सभा की ओर दीन दृग फेरौं मैं ।
कहै रतनाकर त्यों अन्धहू के आगे रोइ,
खोइ दीठि चाहति अनीठहिं निबेरौं मैं ।।
हारी जदुनाथ जदुनाथ हूँ पुकारि नाथ,
हाथ दाबि कढ़त करेजहिं दरेरौं मैं ।
देखी रजपूती की सकल करतूति अब
एक बार बहुरि गुपाल कहि टेरौं मैं ।।४।।

दीन द्रौपदी की परतंत्रता पुकार ज्योंहीं,
तंत्र बिन आई मन-जंत्र बिजुरीनि पै ।
कहै रतनाकर त्यों कान्ह की कृपा की कानि,
आनि लसी चातुरी-बिहीन आतुरीनि पै ।।
अङ्ग पर्‌यो थहरि लहरि दृग रंग पर्‌यो,
तंग पर्‌यो बसन सुरंग पँसुरीनि पै ।
पंचजन्य चूमन हुमसि होंठ बक्र लाग्यौ,
चक्र लाग्यौ घूमन उमगि अङ्गुरीनि पै ।।५।।

औचक चकित सब जादव-सभा के नाथ,
बोलि उठे कौरव-गुमान अब छूटैगौ ।
कहै रतनाकर बहुरि पग रोपि कह्यो,
पांडव बिचारनि को दुःख अब छूटैगौ ॥
अंबर कौ काल कौ हली कौ हरि हरहूँ कौ,
• संतत अनंतता बिधान जब छूटैगौ,
छूटैगौ हमारौ नाम भक्त-भीर-हारी जब,
द्रुपद-सुता कौ चीर-छीर तब छूटैगौ ॥६॥

भरि दृग नीर ज्यौं अधीर द्रौपदी ह्वै दीन,
कीन्यौ ध्यान कान्ह की महान प्रभुता कौ है ।
कहै रतनाकर त्यौं पट में समान्यौ आइ,
अकल असीम भाइ दीनबंधुता कौ है ॥
भौचक समाज सब औचक पुकारि उठ्यौ,
गारि उठ्यौ गहब गुमान गरुता कौ है ।
चौदहे अनंत जग जानत हुते पै यह,
पंद्रहौं अनंत चीर द्रुपद-सुता कौ है ॥७॥

बोलि उठे चकित सुरासुर जहाँ हीं तहाँ,
हा हा यह चीर है कै धीर बसुधा कौ है ।
कहै रतनाकर कै अंबर दिगंबर कौ,
कैधौं परपंच कौ पसार बिधिना कौ है ॥
कैधौं सेसनाग की असेस कंचली है यह,
कैधौं ढंग गंग की अभंग महिमा कौ है ।
कैधौं द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधौं यह कान्ह की कृपा कौ है ॥८॥

धरम - सपूत धरमध्वज रहे हैं बनि,
पारथ सकल पुरुषारथ बिसारे हैं ।
कहै रतनाकर असीम बल भीम हारे,
सूके सहदेव भए नकुल नकारे हैं ।।
भीषम औ द्रोनहूँ निहारि मौन धारि रहे,
माष नाहिं ताकौ ये तो बिबस बिचारे हैं ।
सालत यहै कै हाथ हालत न रावरौ हू,
मानौ आप नाहिं दुख देखत हमारे हैं ।।९।।

अंबर लौं अंबर अनंत द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यौं भई दंग है ।
कोऊ कहै अंध-भूप-मोह-अंध नासन कौं,
चारु चन्द्रिका की चली चादर अभंग है ।।
कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खंडन कौं,
उमड़ति अखिल अखंड-धार गंग है ।
मेरे जान दीन-दुख-दंद हरिबे कौं यह,
करुना - अपार - रतनाकर - तरंग है ।।१०।।

कैधौं पांडु-पूतनि कौ कछूक पखंड यामैं,
कोऊ अभिहार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है ।
कैधौं कछु वाही कलछल-रतनाकर कौ,
नटखट नाटक इहाँ हूँ आनि जूट्यौ है ।।
कहत दुसासन उसास न सँभार्‌यौ जात,
साहस हमारौ जात सब बिधि छूट्यौ है ।
लागि गए अंबर लौं अखिल अटंबर पै,
द्रुपद-सुता कौ अजौं अंबर न खूट्यौ है ।।११।।